Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
July-December 2022 3(2), 1089–1095

BACKGROUND OF CONTEMPORARY HINDI DRAMA

समकालीन हिंदी नाटक की पृष्ठभूमि

Shashikant Rai [1]

[1] Assistant Professor, Punjab University Constituent College Patto Hira Singh

Corresponding Author
Shashikant Rai,
skrai221115@gmail.com

DOI
10.29121/shodhkosh.v3.i2.2022.4135

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2022 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

ABSTRACT

English: Both external and internal elements of the object (power) play an important role in shaping the contemporary sentiment. Literature and society complement each other. There has been a huge change in the perspectives of understanding society. For example, keeping the economic system of society at the center, Marxism gave a new perspective of explaining. According to Marx, the economy of society is the base and politics, religion, culture or philosophy are the superstructure. As the base changes, the social structure also changes. Another western scholar 'Ten' talked about understanding literature from a scientific point of view. He believed that caste, environment, and moment, all three play an important role in explaining a creation or an event.

Hindi: समकालीन भावबोध बनने में वस्तु(सत्ता) की बाह्य एवं आंतरिक दोनों तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक है। समाज को देखने समझने के जो दृष्टिकोण है, उसमें बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। मसलन समाज की आर्थिक व्यवस्था को केंद्र में रखते हुए मार्क्सवादनेसमझाने का एक नया दृष्टिकोण दिया। मार्क्स के अनुसार समाज की अर्थव्यवस्था आधार होती है और राजनीति, धर्म, संस्कृति अथवा दर्शन ऊपरी ढांचा। जैसे-जैसे आधार में परिवर्तन होता जाता है, वैसे-वैसे सामाजिक ढांचा में भी परिवर्तन हो जाता है। वही एक और पश्चिम के विद्वान 'तेन' महोदय ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से साहित्य को समझने की बात कही। उन्होंने माना कि रचना या घटना की व्याख्या करने के लिए जाति, वातावरण, और क्षण इन तीनों का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

1. प्रस्तावना

समकालीन भावबोध बनने में वस्तु(सत्ता) की बाह्य एवं आंतरिक दोनों तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक है। समाज को देखने समझने के जो दृष्टिकोण है, उसमें बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। मसलन समाज की आर्थिक व्यवस्था को केंद्र में रखते हुए मार्क्सवादनेसमझाने का एक नया दृष्टिकोण दिया। मार्क्स के अनुसार समाज की अर्थव्यवस्था आधार होती है और राजनीति, धर्म, संस्कृति अथवा दर्शन ऊपरी ढांचा। जैसे-जैसे आधार में परिवर्तन होता जाता है, वैसे-वैसे सामाजिक ढांचा में भी परिवर्तन हो जाता है। वही एक और पश्चिम के विद्वान 'तेन' महोदय ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से साहित्य को समझने की बात कही। उन्होंने माना कि रचना या घटना की व्याख्या करने के लिए जाति, वातावरण, और क्षण इन तीनों का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

अतः उस समय इन तीनों परिस्थितियों का अध्ययन कर ही, उस रचना को सही तरीके से व्याख्यायित किया जा सकता है। इसलिए सामाजिक परिस्थितियां एवं इसकी गतिविधियों को समझकर ही हम समकालीन भाव बोध को स्पष्ट कर सकते हैं। इस सामाजिक परिवेश का प्रभाव साहित्य की अन्य सभी विधाओं पर पड़ा। पर खासतौर से हम इसमें नाटकों में आए विशेष परिवर्तन पर बात करंगे।

आजादी के बाद समकालीन हिंदी नाटक नई सामाजिक जमीन से उत्पन्न नाटक है। उसकी सामाजिक जड़े अत्यंत गहरी हैं। स्वतंत्रता के बाद का समय और समाज विभिन्न परिवर्तनों परंपरागत मूल्यों के बीच उत्पन्न संघर्ष, नई और पुरानी पीढ़ियों के बीच पैदा होने वाले अंतर्द्वंद का साक्षात्कार है। व्यक्ति और समाज के संबंधों में मूलभूत परिवर्तन हो चुके थे।

स्वतंत्रता के बाद देश में एक नवीन चेतना और नवजागरण तथा औद्योगिक,सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास के लिए अवकाश थे। लेकिन वहीं पर सामाजिक राजनीतिक आर्थिक विसंगतियों और विषमताओं की खाई भी बढ़ गई। वस्तुतः भारतीय जनमानस अनेक द्वन्द्व और समस्याओं का शिकार हुआ। बदलते परिवेश की रीति-रिवाज और नये मूल्य बोध के कारण पुरानी मान्यता और मूल्यों के प्रति व्यक्ति विशेष में अनास्था का स्वर तीव्र होने लगा। समकालीन वातावरण में प्रत्येक भारतीय को नए सिरे से सोचने के लिए विवश किया। सारांश यह है, कि मुख्यधारा और गौण धारा के बीच संघर्ष बीच में आ गया। मसलन नारी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, बढ़ती सांप्रदायिकता समाज के केंद्र में आ गयी जिससे लेखक और रचनाकार का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट हुआ। औद्योगिकीकरण एवं पूंजीवाद ने भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति लोगों की चेतनाओं को ज्यादा प्रभावित किया है, इसलिए व्यक्ति की भौतिक लालसा ने उसकी सामाजिक सरोकारिता को संकुचित कर दिया। पाश्चात्य जीवन शैली ने भारतीय जनमानस को इस तरीके से प्रभावित किया कि हिंदुस्तान बाजारवाद का सबसे बड़ा केंद्र बन कर उभरा। डॉक्टर मदन मोहन शर्मा का मानना है कि-" स्वातंत्र्यपूर्व का परिवेश अपने साथ त्याग, बलिदान और आदर्शों को लेकर चलता है जबकि स्वतान्त्रयोत्तरयुगीन परिवेश इन सीमाओं से परे होकर भौतिकवादी दृष्टि अपनाता है और जीवन मूल्यों में वैषम्य, सामाजिक विसंगतियों एवं विघटन का शिकार हो जाता है।"1

बीसवीं सदी तमाम तरह के ब्याघातों का युग रहा है। मनुष्य जीवन की सार्थकता और निरर्थकता दोनों के द्वन्द्व में फंसा रहा। मनुष्य के जीवन में विज्ञान वरदान भी बना तो अभिशाप भी। अपने होने के वर्चस्व के लिए विश्व युद्ध के घातक परिणाम हमारे सामने दिखे। इसका प्रभाव प्रकृति और पर्यावरण पर भी रहा, यह संकट किसी एक देश या समाज तक ही सीमित नहीं रहा, तभी तो यह विश्वव्यापी संकट के रूप में हमारे सामने आया। वहाँ आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक ही नहीं नैतिक रुप में भी मानव को सोचने पर पुनः मजबूर किया। मैनेजर पांडेय ने ठीक ही लिखा है-" ढलती हुई बीसवीं सदी जो स्मृति छोड़े जा रही है उसमें न अतीत से लगाव के चिन्ह हैं और न भविष्य से उम्मीद के संकेत, केवल वर्तमान के संकट की गहरी छाया ही सच है, क्योंकि यह सही राजनैतिक अस्थिरता आर्थिक अराजकता और वैचारिक विभ्रम को विरासत के रूप में सौंप कर जा रही है। यह समय विचारों, आदर्शों, व्यवस्थाओं और संस्थाओं की ऐसी टूट-फूट का समय है, जिसके आसपास तो क्या दूर-दूर तक विकल्पों का कोई अस्तित्व नही है। कभी-कभी तो यह लगता है कि आजकल विकल्पों की गंभीर चिंता भी कहीं नहीं है।"2

सामाजिक पृष्ठभूमि:- आजादी के बाद भारतीय समाज में अतीत और वर्तमान, पुरातन और आधुनिकता के बीच उपजे द्वन्द्व से निकली प्रवृत्तियों को लक्षित किया जा सकता है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में पारंपरिक मान्यताएं और अधुनातन प्रवृतियां एक साथ दृष्टांत होती हैं। आज समकालीन समाज में सामाजिक व्यवस्था की तीन स्थितियों को हम देख सकते हैं। एक सामाजिक ढांचा तो शुद्ध रूप से पारंपरिक है। दूसरा पूर्णतया पाश्चात्य और आधुनिक होने की होड़ में है। तीसरी सामाजिक धारा जो न तो पारंपरिक है और न ही आधुनिक वह इन दोनों के बीच की स्थितियों से अपनी सामाजिकता बना रहा है। इन सारी परिस्थितियों को साहित्य पहचानते हुए अपने रचनाओं में अभिव्यक्त कर रहा है।

सामाजिक दृष्टि से देखा जाए भारतीय आजादी के बाद स्त्री भी अपनी आजादी को मुखर अभिव्यक्ति दे रही थी। अब वह भी पारंपरिक रूढ़िवादी ढांचे को तोड़ना चाहती हैं, अब उनमें भी शिक्षित संगठित और आत्मनिर्भर होने की चाह प्रबल हो रही थी और सबसे बड़ी उपलब्धि एक महिला का प्रधानमंत्री होना है जिससे समाज में उनको आगे बढ़ने का एक महत्वपूर्ण उदाहरण मिला। महिलाएं भी समाज में पुरुषों की तरह कंधे से कंधा मिलाकर सामाजिक सहभागिता में प्रबल रूप से चाह लिए उपस्थित हुई।

सविता नागर कहती है-" खासकर स्वतंत्रता के बाद की बदली हुई सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में महिलाओं की शिक्षा और रोजगार के अवसरों में काफी वृद्धि हुई है और इन नयी हालातों के फल स्वरुप इनके लिए अपनी समानता की अभिव्यक्ति और उसकी प्रतिष्ठा के नए रास्ते खुल गए हैं।"3 आधुनिक विज्ञान व शिक्षा प्रणाली ने भारतीय समाज को बहुत हद तक प्रभावित किया। शिक्षा से नए भाव बोध और नई चेतना विकसित हुई। इसलिए ज्यादातर युवाओं ने पारंपरिक रूढ़िवादी मानसिकता के विरोध में अपनी आवाज मुखर की। सामाजिक व्यवस्था को संविधान के दायरे में लोकतांत्रिक बनाने का शिक्षित वर्ग द्वारा प्रयास किया गया। वहीं दलित, पिछडे, आदिवासी समुदाय को शिक्षित, संगठित, जागरूक और शोषण के विरुद्ध आवाज़ मुखर करने के लिए संविधान में कानून का प्रावधान किया गया। इन प्रावधानों से समाज में व्यापक रूप से परिवर्तन हुए । इस समसामयिक परिदृश्य को नाटककारों ने अपने नाटकों में मार्मिकता के साथ नग्नरूप में चित्रित किया।

" हिंदी के स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने इस परिवेश की समस्याओं का चित्रण करने की अपेक्षा उसके यथार्थ और नग्नरूप का चित्रण भी प्रमुखता से किया है। इस परिवेश में जीते आम आदमी के द्वंद्व व उसकी त्रासद स्थितियों के चित्रण में नाटककारों के माध्यम से हुई है, तो कहीं ऐतिहासिक, पौराणिक, कथानक तथा चित्रों के माध्यम से।"4

समकालीन हिंदी नाटकों में समस्याओं से सीधे साक्षात्कार करते हुए भोगे हुए यथार्थ का नवीन चित्रण प्रमुखता के साथ किया गया है। समाज में भ्रष्टाचार, आधुनिक जीवन की विडंबना, काम संबंधी विषयों, दलित चेतना, पलायनवाद, जातिवाद, सांप्रदायिकता जैसी समाज विरोधी ताकतों को समकालीन हिंदी नाटकों में अभिव्यक्त किया गया है।

आर्थिक पृष्ठभूमि:- प्रत्येक समाज के संगठन एवं उन्नति का आधार उसकी अर्थव्यवस्था पर निर्भर करता है। समय-समय पर सामाजिक परिवर्तनों के साथ-साथ आर्थिक परिवर्तन भी होते रहते हैं। विज्ञान और औद्योगीकरण में पूंजीवाद को इस तरीके से बढ़ावा दिया है, कि आज हम देख सकते हैं

अमीर और अमीर होता जा रहा है गरीब और गरीब होता जा रहा है। आर्थिक ढांचे ने मनुष्य के सामाजिक दायरे को दो हिस्सों में बांट दिया है। बाज़ारवाद ने मनुष्य को एक वस्तु की तरह पेश किया है। आर्थिक दृष्टि से मानव जीवन में आमूलचूल परिवर्तन आया है। इधर समकालीन जीवन में अर्थ को ही जीवन का लक्ष्य या साध्य मानने की होड़ लगी हुई है। मानव मानव के बीच संबंधों को बनाने में बिगाड़ने में अर्थ महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। आज विश्व अरबपति करोड़पति के लिस्ट में शामिल होना चाहता है। अर्थ के प्रति मनुष्य की आसक्ति ने जीवन के और संबंधों को हाशिये पर ढकेल दिया है। विशेषकर आजादी के बाद व्यक्ति की मानसिकता अधिक व्यवसाय बनाने और स्टार्ट अप की ओर अग्रसित हुई है।

" स्वाधीनता के बाद का भारत एक बड़ा पूंजीपति वर्ग एक ओर सामंतवाद से और दूसरी साम्राज्यवाद से समझौता किए रहने के कारण जन चेतना के विकास में अनेक प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न करता रहा है।"5

स्वतंत्रता आंदोलन के समय भारतीय जनमानस ने एक बेहतर जीवन प्रत्याशा और समान व्यवस्था की कल्पना की थी। ऐसे समाज का स्वप्न देख रहे थे जिसमें ना कोई शोषित रहेगा ना कोई शोषक और ना ही किसी भी प्रकार का भेदभाव होगा। मनुष्य के जीवन की मूलभूत सुविधाएँ रोटीकपड़ा और मकान सर्व सुलभ होंगी। लेकिन आजादी के बाद यह सारे सपने ध्वस्त हो गए; और आम जनता अपने को ठगी महसूस करने लगी। सत्ताधारियों ने पूजीपतियों और जमीदारों को बढ़ावा देना शुरू किया। विकास की सारी योजनाएं एक विशेष समाज तक ही सीमित रह गयी। कहने को केवल हम एक मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में कहे जाते हैं, पर पूरी तरीके से भूमंडलीकरण ने स्वदेशी करण का स्थानांतरण कर दिया। मनुष्य का जीवन एक ब्रांड की तरह हो गया है। हम अब ब्रांड को ही ओढ़ने, बिछाने, जीने, खाने, पीने और जीवन की हर गतिविधियों में ब्रांड का समावेशन ही करने लगे है। जैसे ब्रांड मनुष्य का स्टेटस सिंबल हो गया है, और यह पूरी तरीके से भूमंडलीकरण की साजिश के तहत आम जनमानस को भी इसकी गिरफ्त में लिया जा रहा है इन परिवर्तनों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि मनुष्य किसी हाथ का कठपुतली हो गया है। उसके जीवन जीने को कोई निर्धारित कर रहा है, उसको क्या पहनना चाहिए? उसको क्या देखना चाहिए? उसे ब्रांड के रंग में रंगने की पुरजोर कोशिश जारी है। और इन सब परिस्थितियों का मूल आधार अर्थ, पैसा, पूँजी है। शिवप्रसाद सिंह कहते हैं कि-"स्वतंत्रता के बाद भारतीय इतिहास के अध्याय का एक ही शीर्षक हो सकता है शर्मनाक भिक्षाकाल, इस भिक्षाकाल की सबसे बढ़ि याचक मुद्रा है:तटस्थता। मैं यह अस्तित्व, तटस्थता, धर्मनिरपेक्षता आदि का सिर्फ प्रशंसक ही नहीं बल्कि उन्हें जीवित मूल्य मानकर उनके लिए सब कुछ सहने, भोगने का संकल्प भी रखता हूं। लेकिन मैं जिस तटस्थता की बात कर रहा हूं, वह कोई मूल्य नहीं है। दोनों ही शिविर के देशों से अधिक से अधिक कर्ज पानी की याचक मुद्रा है।जो दाताओं के अपराधों और उत्पीड़न से संत्रस्त मनुष्यता से सही समर्थन देने में कतराती रहती है।"6

एक दूसरे की देखा-देखी में केवल समाज ही नहीं अपितु देश भी कर्ज की दलदल में धंसता जा रहा है और कर्ज देने वाला देश उसे पूरी तरीके से अपनी संस्कृति अपनी सभ्यता और अपने बाजार को उस पर थोपता गया।

इस तरीके से समाज में विषमता बढ़ती गयी। सारी सरकारी योजनाएं असफल होती गयीं, व्यक्ति के जीवन में जो परिवर्तन होना चाहिए जो समानता होनी चाहिए, वह नहीं हुआ ।

द्वितीय और तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं ने औद्योगिक विकास पर ध्यान केंद्रित किया, जिसके कारण भारत में पूंजीवाद का जन्म हुआ। कारखानों, मिलों आदि की स्थापना के परिणाम स्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि के स्थान पर उद्योग धंधों पर केंद्रित हो गयी। भारतीय मध्य वर्ग का उदय इन्हीं परिस्थितियों से शुरू हुआ।प्रभात शर्मा का यह कथन उल्लेखनीय है कि-"औद्योगिकीकरण ने भारतीय समाज में जहां एक ओर आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ किया है, वहीं दूसरी ओर सामान्य जनजीवन में काफी परिवर्तन उपस्थित कर दिए हैं। औद्योगिकीकरण ने भौतिकवाद को जन्म दिया है, जिसके कारण आपसी संबंधों का निर्धारण अर्थ के परिप्रेक्ष्य में होने लगा है। सामाजिक क्षेत्रों में औद्योगीकरण ने सकारात्मक और नकारात्मक अथवा आशा और निराशा दोनों मूल्यों को समाज में स्थापित किया है।7

इन आर्थिक गतिविधियों से मानवी जीवन में आये परिवर्तन को समकालीन हिंदी नाटककारों ने संवेदनात्मक वैचारिकी के रूप में चित्रित किया है।

राजनीतिक पृष्ठभूमि:- राजनीति राष्ट्र का महत्वपूर्ण और निर्णायक अंग है। राष्ट्र की सशक्त और सक्रिय व्यवस्था है। प्रत्येक राष्ट्र की लगभग-लगभग अपनी राजनीति होती है, जिससे देश की उन्नति और समृद्धि के रास्ते तय किए जाते हैं। प्रत्येक राजनीति का अपने अलग-अलग नियम कायदें होते है। सबसे अच्छी राजनीति उससे कहा जा सकता है, जो अपनी सीमाओं में रहते हुए ज्यादा से ज्यादा लोकतांत्रिक हो। अगर राजनीति अपनी सीमाओं को लाँघती है, तो निश्चित रूप से नकारात्मक वातावरण देश में बन जाता है। इसलिए राजनीति की जिम्मेदारी किसी भी राष्ट्र में सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है। चाहे वह सामाजिक हो या सांस्कृतिक, मानव जीवन को शासित करने वाली एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में आज राजनीति प्रतिष्ठित हो चुकी है। अतः लोकमंगल की व्यवस्था के लिए बेहतर राजनीति की सख्त जरूरत होती है।

देश के आजाद होने के बाद देश को बेहतर चलाने के लिए संविधान का निर्माण हुआ। मनुष्य के जीवन को बेहतर से बेहतर बनाने के लिए प्रत्येक देश के अच्छे से अच्छे कानून को संविधान के अंदर लाया गया। भारत देश के नागरिकों को स्वतंत्र रूप से जीने का अधिकार, बोलने का अधिकार, चुनाव करने का अधिकार, रहने, खाने और गरिमा पूर्ण जिंदगी जीने का अधिकार प्राप्त हुआ। गरीब से गरीब जनता को भी बेहतर जिंदगी जीने के लिए कानून का प्रावधान किया गया। देश को उन्नत, समृद्ध, आत्मनिर्भर और प्रगतिशील बनाने के लिए भिन्न-भिन्न तरीके के कानून बनाए गए। आर्थिक रूप से मजबूत बनाने के लिए भिन्न-भिन्न योजनाएँ लाई गईं। पर इन सब के बावजूद भी देश की वास्तविक स्थिति कुछ और ही है। अभी भी गरीबी, भुखमरी,

बेरोजगारी, देश की बदहाली, उसी तरीके से बनी हुई है। सारी योजनाएं किसी विशेष वर्ग तक ही सीमित रह जा रही है। निचले पायदान या हाशिये का समाज उसी तरीके से अपनी जिंदगी जीने के लिए अभिशप्त है।

आम आदमी को छोटी से छोटी समस्याओं के समाधान के लिए पापड़ बेलने पड़ जा रहे हैं। आम आदमी एक तरफ सुख सुविधाओं से वंचित होकर अत्यंत दयनीय जीवन बिता रहा है, तो दूसरी तरफ सांप्रदायिकता, जातिवाद, शोषण की समस्याएं अपना पैर फैला रही हैं। जिनके कंधों पर लोकतांत्रिक मूल्यों को स्थापित करने के भार हैं व अपनी कुर्सी को बचाने के लिए तमाम तरह के हथकंडे अपना रहे है। अवसरवादिता और नैतिकतास्वार्थसिद्धि, व्यक्तिवादिता औरअहंवादिता जैसी मानसिकताएं तेजी से पनपने लगी है। लोकतांत्रिक मूल्य केवल संविधान के पृष्ठों में ही सिमट कर रह गए हैं। लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का वक्तव्य उल्लेखनीय है-" आज का युग राजनीति प्रधान युग है। डेमोक्रेसी के स्थान पर 'भावोक्रेसी'का युग है और दुर्भाग्यवश स्वतंत्र भारत की राजनीति भ्रष्ट हो गयी। अब महात्मा गांधी के राजनीतिक आदर्श तो नहीं रह गये। उनके स्थान पर बहती गंगा में हाथ धोने की प्रवृत्ति बढ़ गई है।"8

समकालीन भारतीय परिवेश में भ्रष्टाचार एक ऐसे सामाजिक मुद्दे के तौर पर उभर कर हमारे सामने आया है जिससे निकल पाना बहुत बड़ी चुनौती है। सामाजिक तौर पर यह सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों द्वारा योजनाओं के क्रियान्वयन पदों पर नियुक्तियां और संस्थाओं के गठन में लक्षित होता है। तो राजनीतिक स्तर पर सत्ता प्राप्ति और कुर्सी को बनाए रखने में दृष्टि होती है। छोटे स्तर से लेकर बड़े स्तर तक सब भ्रष्टाचार में लिप्त मिल रहे हैं। इस भ्रष्टाचार का शिकार अबोध, अशिक्षित आम जनमानस है। आजादी के बाद न जाने राजनीतिक स्तर पर बड़े-बड़े घोटाले देखने को मिलते हैं। इन घोटालों से भी जनता में हताशा और निराशा भर गई है। जिन पैसों से समाज को बेहतर बनाया जा सकता है उन पैसों से व्यक्ति विशेष तक ही समृद्धि देखी जा सकती है। नीतियों से लेकर बड़े से बड़े फैसले करने तक राजनीतिक नेताओं का प्रक्षेप विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है।" कुर्सी न छोड़ने की भूख असहाय हो चुकी है। कुर्सी की इसी छीना-झपटी के कारण नई नई समस्याएं देश के सामने आती जा रही हैं.... यहीं से रिश्वत के द्वारा दलबदल, चुनाव में जीतने के लिए व्यापारियों से दबाव डालकर चंदे, परमिटें, लाइसेंस के नाम पर धन संचय की प्रवृत्ति बढ़ने लगी । चुनाव में जोर जबरदस्ती, रिश्वतखोरी, जातिवाद, वर्ग संघर्ष, जनता से झूठे वायदे आदि का उपयोग होने लगा है।"9

त्रासद और विडंबनापूर्ण राजनीतिक परिदृश्य को समकालीन हिंदी नाटक बखूबी अपने नाटकों में चित्रित कर रहा है। और साथ ही साथ एक बेहतर एवं स्वस्थ राजनीतिक परिदृश्य को बनाए रखने के लिए विकल्प प्रस्तुत कर रहा है। राजनेताओं के भ्रष्टाचारी जीवन को लोगों के सामने रखने के प्रयास में समकालीन नाटककार निश्चित रूप से सफल हुए हैं। हास्य और व्यंग के माध्यम से ज्यादातर लोगों को जागरूक करने का काम नाटकों के माध्यम से किया जा रहा है। जब तक भारत का आम जनमानस अपने अधिकार को लेकर जागरूक नहीं होगा, शिक्षित नहीं होगा, संगठित नहीं होगा तब तक ऐसे ही राजनीतिक शोषण का शिकार होते रहेंगे।

मनुष्य इस धरा का सर्वाधिक बौद्धिक प्राणी है। वह सोच सकता है, तर्क कर सकता है तथा गूढ़ से गूढ़तम समस्याओं एवं रहस्यों की तह तक चला जाता है। परंतु मानव सदा से इतना समझदार, विवेकी और तर्कशील नहीं था। धर्म शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'धृ' धातु से मानी जाती है, जिसका अर्थ है धारण करना। जो कुछ भी धारण करने योग्य है वही धर्म है। विस्तृत अर्थों में धर्म से तात्पर्य कर्तव्य पालन से है। हिंदू धर्म ग्रंथों में मनुष्यों से यह अपेक्षा की गई है, कि वे अपने धर्म अर्थात नैतिक कर्तव्यों का पालन करें।

मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ एक बेहतर समाज को बनाने के लिए जो विधि विधान बनाया गया होगा, उनमें जो नैतिक मूल्य स्थापित किए गए होंगे उन्हीं मान्यताओं को उनके कर्तव्यों को मानने वाली व्यवस्था ही धार्मिक व्यवस्था रही होंगी। धर्म का अर्थ होता है धारण करना, पर समय के साथ-साथ धर्म किसी विशेष संप्रदाय से संपृक्त हो गया।आगे चलकर धर्म का पर्याय संप्रदाय या पंथ हो गया।

यशपाल अपनी प्रसिद्ध दिव्या उपन्यासकी भूमिका में लिखते हैं कि-"मनुष्य भोक्ता नहीं करता है। संपूर्ण माया मनुष्य की क्रीड़ा है।.... मनुष्य केवल परिस्थितियों को सुलझाता ही नहीं, वह परिस्थितियों का निर्माण भी करता है। वह प्राकृतिक व भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन करता है, सामाजिक स्थितियों का वह सृष्टा है।... मनुष्य से बड़ा है केवल उसका अपना विश्वास और स्वयं उसका ही रचा हुआ विधान। अपने विश्वास और विधान के सम्मुख ही मनुष्य विवशता अनुभव करता है और स्वयं ही वह उसे बदल भी देता है।"10

इसलिए धार्मिक विधान अपने समय का सबसे प्रमुख विधान रहा होगा । उस समय समाज को ध्यान में रखते हुए सारे नियम कानून बनाए गए होंगे। लेकिन धीरे-धीरे समय के साथ उसकी कुछ मान्यताएँ आज के परिवेश में सटीक बैठ नहीं पा रही है। उनमें बाह्य आडंबरों का समावेशन धीरे-धीरे बढ़ता गया और धर्म एक कर्मकांड के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। समसामयिक परिवेश में धर्म के नाम पर ध्रुवीकरण तेजी से हो रहा है। सांप्रदायिकता आए दिन बढ़ रही हैं। अपने अपने धर्म को श्रेष्ठ बताने की होड़ लगी हुई है, धर्म में निहित मूल्य मान्यताएं सब गौण हो गई केवल बाह्य आडंबर ही प्रबल होता दिखाई दे रहा है। धर्म को व्यवसाय की तरह कुछ लोगो ने बना दिया। खासतौर से जो धर्म अंत: साधना के रूप में हमारे संविधान में अनुच्छेद 25 में उल्लेखित किया गया है। उसी धर्म की राजनीतिकरण के बाद धर्म चुनावी मुद्दा हो गया है। भारत में तमाम धर्मों को मानने वाले लोग हैं। अपने-अपने धर्म में लोगों की आस्था प्रबल है। स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था को अव्यवस्थित करने में अंग्रेजों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

" भारत को धर्मनिरपेक्ष देश माना जाता है। इस देश में अनेक धर्म के अनुयायी निवास करते हैं। हिंदू और मुसलमान संप्रदाय इस देश के प्रमुख संप्रदाय में से एक है। मुस्लिम संप्रदाय मुगल शासन काल से जुड़ी हुई है। भारत में फूट डालने के लिए अंग्रेजों ने मुस्लिम संप्रदाय को हिंदुओं के विरुद्ध भड़काया।"11

गांधी जी ने धर्म शब्द को अलग-अलग संदर्भ में दो तरीके से प्रयुक्त किया है। कहीं-कहीं वे धर्म को मजहब या पंथ के ही अर्थ में लेते हैं किंतु दार्शनिक स्तर पर वे धर्म का अर्थ स्व-कर्तव्य पालन से लेते हैं। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है- "परहित सरिस धर्म नहिं भाई पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।"

गाँधीजी धर्म के इसी अर्थ को राजनीति में काम्य मानते हैं। इसका अर्थ हुआ कि राजनेताओं पर यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वे अपने स्वार्थ से मुक्त होकर सिर्फ कर्तव्य पालन के भाव से प्रशासन चलाएं और समाज को अधिकाधिक लाभ प्रदान करें। मजहब वाले अर्थ में वे भी धर्म को राजनीति को हिस्सा नहीं बनाना चाहते हैं।"धर्म प्रत्येक व्यक्ति का निजी मामला है, इसे राजनीति या राष्ट्रीय मामले के साथ नहीं मिलाना चाहिए।"

लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण है कि हम गाँधीजी के जन्मदिन को तो बड़ी धूमधाम से मनाते हैं पर उनके विचारों से कुछ भी नहीं सीखते।

सांप्रदायिकता के विषय में रोमिला थापर ने कहा है-" जितनी बड़ी तादाद में उन्नीसवीं शताब्दी के मिथक हम ढो रहे हैं, वह एक विचित्र बात है। भारतीय इतिहास के सांप्रदायिक काल विभाजन का पहला साक्ष्य जेम्स मिल से मिलता है। उसने 19वीं शताब्दी की शुरुआत में भारत का जो इतिहास लिखा था उसमें हिंदू सभ्यता, मुस्लिम सभ्यता और ब्रिटिश काल की चर्चा की है। इसमें मुस्लिम सभ्यता के मुकाबले एक रूढ़ एक रूप हिंदू सभ्यता का विचार पैदा करने में मदद की।.... इतिहास में जो नया काम किया जा रहा है, उसे देखते हुए भी हिंदू भारत और मुस्लिम भारत जैसी शब्दावली का कोई खास अर्थ नहीं रह गया है। अतः मेरा तो यह मानना है कि सांप्रदायिकता इतिहास का जिस तरह इस्तेमाल करती है, उसमें यह ढांचा लगभग अंतर्निहित है। इसके अलावा प्राचीन भारत के बहुत से क्षेत्र जो नाजुक हो गए हैं उन पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।"12

अतः सांप्रदायिकता के नैरेटिव को अंग्रेजों के दृष्टिकोण से नहीं देखना चाहिए अपितु भारतीय स्थिति के अनुरूप उनकी संवेदनाओं के अनुसार देखने की कोशिश करनी चाहिए।

आज धर्म के नाम पर सांप्रदायिकता को उकसाया जाता है; जिसका परिणाम सांप्रदायिक दंगे फसाद के रूप मे सामने आता है।जिससे समाज में हिंसा की प्रवृत्ति प्रबल होती है। धर्म को बचाने के नाम पर लोग एक दूसरे के खून तक करने के लिए उत्सुक रहते हैं। इन सारी परिस्थितियों का समकालीन हिंदी नाटककारोंने अपने नाटकों में गहरी संवेदना के साथ चित्रित किया है इसमें समाज के बड़े से बड़े सांप्रदायिक खतरे को रेखांकित किया गया है। धार्मिक रूढ़ियां,अंधविश्वास,सांप्रदायिकता,पाखंड इत्यादि को समकालीन हिंदी नाटक मजबूती के साथ प्रतिबिंबित करता है।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि:- संस्कृति समाज और जीवन के विकास के मूल्यों की उपयुक्त संरचना है। यह समाज में अंतर्निहित गुणों और उच्चतम आदर्शों के समग्र रूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने, विचारने ,कार्य करने, खाने-पीने, बोलने, नृत्य, गायन, साहित्य, कला, वास्तु आदि में परिलक्षित होती है। 'संस्कृति' का शाब्दिक अर्थ उत्तम या सुधरी हुई स्थिति से है। संस्कृति किसी समाज में पाए जाने वाले उच्चतम मूल्यों और आदर्शों कि वह चेतना है जो सामाजिक प्रथाओं, रीति-रिवाजों, चित्तवृत्तियों, भावनाओं, मनोवृत्तियों, रहन-सहन और आचरण के साथ-साथ उनके द्वारा भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप दिए जाने में अभिव्यक्त होती है। संस्कृति उस विधि का प्रतीक है जिसमें हम सकारात्मक दिशा में सोचते और कार्य करते हैं।

पंडित जवाहरलाल नेहरू के अनुसार-" संस्कृति की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती, परंतु संस्कृति के लक्षण देखे जा सकते हैं। हर जाति अपनी संस्कृति को विशिष्ट मानती है। संस्कृति एक अनवरत मूल्य धारा है। यह जातियों के आत्मबोध से शुरू होती है। इस मुख्यधारा में संस्कृति की दूसरी धाराएं मिलती जाती है तथा उनका समन्वय होता जाता है। इसमें किसी जाति या देश की संस्कृति उसी मूल रूप में नहीं रहती बल्कि समन्वय से वह और अधिक संपन्न तथा व्यापक हो जाती है।" कहने का कारण यह है कि संस्कृति को लक्षणों से तो जान सकते हैं किंतु स्पष्टतया परिभाषित करना संभव नहीं। भारतीय संस्कृति वस्तुतः भारतीय ज्ञान की धारा का अविरल प्रवाह है, यह विभिन्न सांस्कृतिक धाराओं का संगम है, जिसमें सनातन संस्कृति से लेकर आदिवासी, तिब्बत, मंगोल, चीनी, द्रविड़, हड़प्पाई, आर्य अनार्य, शक हूण, कुषाण, पल्लव, यवन, अरबी ईरानी मुगल और यूरोपीय धाराएं समाहित है। यह धाराएं हमारे देश को गंगा जमुनी या इंद्रधनुषी स्वरूप प्रदान करती हैं, जिसके परिणाम स्वरूप समन्वय एवं समरसता तथा विविधता में एकता हमारी सबसे बड़ी ताकत बनकर उभरी है।

इसके दुष्परिणाम भी हमारे सामने आए हैं। बदलते हुये युग और समय के साथ व्यक्ति की चेतना भी बदलती रहती है। साहित्यिक और सांस्कृतिक वातावरण में जो परिवर्तन आ रही है, उसका सीधा प्रभाव मनुष्य की मनोदशा पर पड़ रहा है-" आज के मानव की स्थिति यह है, कि एक ओर भौतिकता की जड़ उपासना से उसकी चेतना विद्रोह करती है,दूसरी ओर आत्मा की अतेन्द्रीय सत्ता और अखंड अनाहत आनंद कि उसे अनुभूति नहीं हो पाती। अन्तर्जगत और बहिर्जगत के संघर्ष तथा उनकी महत्ता के पोषक सिद्धांतों के द्वन्द्व ने जीवन में एक विचित्र गतिरोध ला दिया है। यह मनोदशा व्यक्ति की न होकर युग की है, और साहित्य के क्षेत्र में आने वाली नई कृतियां स्पष्ट रूप से इसको व्यक्त कर रही हैं।"13

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी अशोक के फूल में लिखते हैं, कि "सब कुछ में मिलावट है। सब कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है तो केवल मानव की जिजीविषा।" जिजीविषा ही वह संस्कार है जो संश्लिष्ट अथवा समेकित भारतीय संस्कृति का रूप लेती है। एक जगह और हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं "इस धरती के मनुष्य की जीवन शक्ति बड़ी निर्मम है। वन सभ्यता एवं संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों एवं व्रतों को धोती-बहाती यह जीवनधारा आगे बढ़ी है। संघर्षों से मनुष्य ने नई शक्ति पाई है। हमारे सामने संस्कृति का आज जो रूप है वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है।" भारतीय संस्कृति का यह समन्वित रूप संस्कृत भाषा के द्वारा रामायण, महाभारत, गीता, कालिदास भवभूति, भास के काव्यों और नाटकों के माध्यम से बार-बार व्यक्त हुआ है। जर्मनी के महाकवि वेटे ने शाकुंतलम को पढ़कर कहा था कि उसमें स्वर्ग एवं धरा का सम्मिलन है। यह समूची भारतीय संस्कृति एवं साहित्य परंपरा के लिए कहा जा सकता है। तमिल का संगम साहित्य, तेलगु का अवधान साहित्य, हिंदी का भक्ति साहित्य, उर्दू का ग़ज़ल साहित्य, मलयालम का मणिप्रवालम, पंजाबी का रम्याख्यान, मराठी का पवाड़ा, गुजराती का फाग,

बांग्ला का मंगल गीत, असमिया का बुरुजी गीत आदि भारतीय सांस्कृतिक उद्यान के अनमोल फूल हैं। इनकी संयुक्त एवं संगठित माला ही समेकित भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। अमीर खुसरो, रसखान, जायसी , गुजरात के नरसी मेहता, असम के शंकरदेव, बंगाल के चंडीदास, महाराष्ट्र के एकनाथ, तुकाराम, नामदेव, नाथ-सिद्ध हो या कबीर हो कृष्ण भक्त सूर हो या राम भक्त तुलसी सभी हमारी संस्कृति में पूज्य हैं प्रचलित हैं। यानी धर्म क्षेत्र भाषा की कोई बाधा इस गंगा जमुनी धारा के प्रवाह के लिए बाधक नहीं रही है। इस धारा ने जिन आदर्शों को प्रतिष्ठित किया, वह सांस्कृतिक एकता, मानवीय समता सारे संसार को अपने भावात्मक विस्तार में समेट लेने की, देशव्यापी ही नहीं, विश्वव्यापी सामाजिक चेतना से युक्त रही है। सांस्कृतिक मूल्यों को समय-समय पर भिन्न-भिन्न आंदोलनों ने संगठित कर लोगों को जागरूक किया-" स्वतंत्रता की पहली वामपंथी विचारधारा और आंदोलनों का प्रवाह उत्पन्न हुआ और बढा। भारत के राष्ट्रवादी आंदोलन में उनके योगदान हानिकारक रहे और भारतीय जन मन पर उसका प्रभाव प्रायः नगण्य। परंतु तब भी मजदूर आंदोलनों को संगठित करने, उनके अधिकारों के लिए संघर्ष करने, भारत को समाजवादी विचारधारा की ओर जाने तथा भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग का ध्यान आर्थिक और सामाजिक न्याय की ओर आकर्षित करने में उसकी भूमिका निःसंदेह सराहनीय है।"14

भारत की समेकित संस्कृति का सबसे विवादित हिस्सा हिंदू मुस्लिम प्रश्न का रहा है। एक खेमा भारतीय संस्कृति को एक रंग का बनाना चाहता है एक रंग में रंगना चाहता है। लेकिन वह यह भूल जाते हैं हमारी संस्कृति में कुछ हद तक इस्लामी संस्कृति का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। दो महान संस्कृतियों का एक मिला हुआ रूप भारत में सामने आया जिसे सामासिक संस्कृति के एक अंग के रूप में गंगा जमुनी तहजीब कहा गया। इसकी शुरुआत अमीर खुसरो ने की वह पहले मुसलमान थे जिन्होंने अपने साहित्य में भारत की जमीन से प्यार का इजहार किया। वहीं हिंदवी के भी प्रारंभिक रचनाकार थे, वह तूती-ए-हिंद कहे जाते थे; तबले, सितार तथा अनेक रागों के उद्धारक माने जाते हैं, उनकी लिखी कव्वालियाँ और गीत भारतीयता की निधि है। उर्दू भाषा,ताजमहल, संगीत तरह-तरह की क्षेत्रीय कलाओं, शिल्पों,पहनावे को क्या हम अलग कर के देख सकते है? कबीर, रहीम, रसखान से जैनुल आबदीन, अलाउद्दीन बहमन शाह से लेकर अब्दुल कलाम, बिस्मिल्लाह खान, अलाउद्दीन खान तक यह सिलसिला आकर समृद्धि पाता है। भक्त कवियों की कार्य पद्धति पर इस्लाम का प्रभाव स्पष्ट है। मुगल शैली, फ़ारसी इतिहास लेखन, राजपूत शैली, पहाड़ी कलम, वास्तु एवं स्थापत्य कलाओं, सूफी काव्य, सूफी संगीत, ग़ज़ल जैसे अनेक उपादान हैं, जो बेहिचक यह मानने को बाध्य करते हैं कि भारत की समेकित संस्कृति एक दूसरे से गहरे स्तर पर प्रभावित करती आई है। यूरोपीय उपनिवेशवाद का भारतीय संस्कृति पर सबसे गहरा प्रभाव पड़ा है। यह संस्कृति का परिणाम कहां तक सकारात्मक है और कहां तक नकारात्मक है इसकी व्याख्या तो भविष्य के ऊपर छोड़ दिया जाए पर नव उपनिवेशवाद और साथ ही साथ भूमंडलीकरण के प्रभाव ने निश्चित रूप से हमारी विकसित संस्कृति को कुछ हद तक विखंडित किया है। वस्तुतः कट्टरतावाद, उपभोक्तावाद, बाजारवादी संस्कृति, मूल्य शिक्षा प्रणाली ने भारत की समेकित संस्कृति पर एक योजनाबद्ध आक्रमण सा कर दिया है। वैश्वीकरण के प्रभाव से संसार ही नहीं मनुष्य भी छोटा बन गया है 'ग्लोबल विलेज' की अवधारणा मनुष्य को एक वस्तु की तरह प्रस्तुत कर रही है। आज....."नीति, धर्म, सदाचार, न्याय, अनुशासन, आर्थिक विकास, कार्यक्षमता, स्वस्थ परिवर्तनकारी शक्ति, अनासक्त चिंतन, देश की एकता, शिक्षा, पारस्परिक स्नेह,शुष्कतृण के समान धधकते दिखाई पड़ रहे हैं ।"15

इन्हीं अंग्रेजों ने फूट डालो और राज करो के प्रयोग शुरू किये; सांप्रदायिकता जातिवाद क्षेत्रवाद भाषावाद यानि भारत को तोड़ने के सभी संभव प्रयास उन्होंने किए, अब तो नव साम्राज्यवाद भी उन्हीं का उत्तराधिकारी है, जिसके हाथों सांप्रदायिक लोग खेल रहे हैं। हमें समय रहते इस षड्यंत्र को पहचानना होगा भारत की विविधता को सम्मान देकर ही एकता को बढ़ावा दिया जा सकता है जो भारतीय मनीषियों की सबसे बड़ी ताकत रही है।

इन सारी परिस्थितियों और षड्यंत्र को समकालीन हिंदी नाटककारों ने बखूबी पहचाना है, और अपने नाटकों में चित्रित कर, एक पूर्ण संस्कृति से भरा हुआ भारत का स्वप्न सृजन करने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दिखाने की कोशिश की है। इटली के इतिहासकार लिओ बेलियानी ने ठीक ही कहा है कि-"हमारी सदी यह साबित करती है कि न्याय और समानता के आदर्शों का विजय हमेशा अल्पजीवी का होती है, और यह भी कि अगर हम अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कर सकें तो नई शुरुआत की संभावना हमेशा बनी रहती है, इसलिए अत्यंत कठिन समय में भी निराश होने की जरूरत नहीं।"16

संदर्भ

स्वातंत्र्योत्तर युगीन परिप्रेक्ष्य और नुक्कड़ नाटक: एक मूल्यांकन ,पृष्ठ 61
मैनेजर पांडेय, संकट के बावजूद, पृष्ठ 10
सविता नागर ,भारतीय समाज में कार्यशील महिलाएं ,पृष्ठ 14
डॉक्टर चंद्रशेखर हिंदी नाटक और लक्ष्मी नारायण लाल की रंग यात्रा ,पृष्ठ 14
अवधेश्वर चंद्रगुप्त, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक:विचार तत्व, पृष्ठ 165
शिव प्रसाद सिंह, आधुनिक परिवेश और नवलेखन
प्रभा वर्मा, हिंदी उपन्यास: सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया और स्वरूप ,पृष्ठ 89
डॉक्टर लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, द्वितीय महायुद्धोत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 45
डॉक्टर चंद्रशेखर, हिंदी नाटक और लक्ष्मी नारायण लाल की रंग यात्रा, पृष्ठ 14
यशपाल, दिव्या, प्राक्कथन
गोविंद राम वर्मा, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पृष्ठ 18
नया पथ, अक्टूबर-दिसंबर 1992

डॉक्टर जगदीश गुप्त, आलोचना अंक 3 वर्ष 2, पृष्ठ 56
एल.पी शर्मा, आधुनिक भारत, पृष्ठ 437
डॉ दशरथ ओझा, आज का हिंदी नाटक: प्रगति और प्रतिमान, पृष्ठ 35
मैनेजर पांडेय, संकट के बावजूद, पृष्ठ 26